International Research Journal of Humanities, Language and Literature
ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 6.972 Volume 10, Issue 8, August 2023
Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षण संस्थाओं में संगीत शिक्षण एवं पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी का योगदान : एक अध्ययन

डॉ. शिखा ममगाई
एसोसिएट प्रोफेसर (संगीत)
पंडित ललित मोहन शर्मा परिसर,
ऋषिकेश।

मुख्य शब्द :– संगीत–शिक्षा, गुरू–शिष्य परम्परा, शिक्षण संस्थान, संगीतज्ञ, शास्त्रकार।

भारत में प्राचीन काल से ही संगीत शिक्षा का मूल स्वरूप पूर्ण रूप से गुरू–शिष्य परम्परा और गुरूमुखी शिक्षा पर निर्भर रहा है। विद्वानों ने भारतीय संगीत के इतिहास का प्राचीनतम् काल वैदिक काल को माना है। वैदिक कालीन संगीत पूर्णतः नियमबद्ध था जो सामगान के रूप में प्रचलित था। सामगान को संरक्षित करने तथा अग्रिम पीढ़ी तक पहुँचाने के उद्देश्य से सामगान का विशेष प्रशिक्षण मुख्य साम–गायकों द्वारा ऋत्विजों को दिया जाने लगा। संभवतः संगीत शिक्षा का आरम्भ यहीं से हुआ। सामगान का विशिष्ट प्रशिक्षण प्रदान करने वाली तीन शाखायें कौमुथीय शाखा, राणायनीय शाखा तथा जैमिनीय शाखा उल्लेखनीय है। इन शाखाओं के अपने–अपने पृथक गुरूकुल और आश्रम थे जिनमें साम–गायन की शिक्षा मौखिक रूप में प्रदान की जाती थी। इसके पश्चात् रामायण तथा महाभारत काल में भी संगीत शिक्षा का आदान–प्रदान तत्कालीन संगीत–शालाओं में गुरू–शिष्य परम्परा के आधार पर किया जाता था। तत्पश्चात विश्व के प्राचीनतम् विश्वविद्यालयों में शामिल तक्षशिला एवं नालन्दा विश्वविद्यालयों में भी शिक्षा प्राप्त करने का माध्यम गुरू–शिष्य परम्परा ही था।

प्राचीन काल की भाँति मध्यकाल में भी संगीत का प्रशिक्षण गुरू–शिष्य परम्परा के आधार पर दिया जाात था। लेकिन तत्कालीन समय व परिस्थितियों के अनुसार हुए परिवर्तनों के कारण गुरूकुलों तथा आश्रमों के अतिरिक्त राजमहलों में भी संगीत शिक्षण का कार्य होता था। मध्यकाल में ही एक नवीन संगीत शिक्षण प्रणाली के अन्तर्गत 'घराना परम्परा' का प्रादुर्भाव हुआ जिसके फलस्वरूप घरानेदार शिक्षण पद्धति का प्रचलन आरम्भ हुआ। कालान्तर में इन घरानों का शिक्षण पद्धति के दोषों को संगीत विद्वानों ने अनुभव किया और निर्णय लिया कि इस पारम्परिक संगीत शिक्षण पद्धति में परिवर्तन होना चाहिए। इसी कारण संगीत की व्यक्तिगत शिक्षण पद्धति के स्थान पर संस्थागत संगीत शिक्षण पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ।

वर्तमान में जिस प्रकार संगीत जन–जन के लिए सुलभ हुआ है उसका मुख्य कारण संस्थागत संगीत शिक्षण पद्धति है। यद्यपि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संगीत का प्रशिक्षण शिक्षण संस्थाओं में आरम्भ हो गया था जिसका श्रेय जामनगर के पण्डित आदित्यराम, बड़ौदा के मौलाबख्श तथा कलकत्ता के श्री सुरेन्द्र मोहन टैगोर को जाता है। लेकिन आज जो विद्यालय, विश्वविद्यालय और संगीत की विभिन्न संस्थाओं में संगीत का प्रशिक्षण दिया जा रहा है उसका श्रेय प्रमुख रूप से पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुष्कर एवं पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे जी को जाता है जिन्होने अपने अथक प्रयत्नों एवं अनवरत चेष्टाओं के परिणाम स्वरूप शिक्षण संस्थाओं में अन्य विषया की भांति संगीत को भी एक स्वतन्त्र विषय के रूप में सम्मिलित कराया।

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

पं. भातखण्डे जी का शिक्षण संस्थाओं को योगदान–

भारतीय संगीत जगत सदैव पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी का ऋणी रहेगा क्योंकि जिस प्रकार महात्मा गांधी ने विदेशी शासकों से देश को स्वतन्त्र कराकर लोकतन्त्र स्थापित कराया उसी प्रकार पं. भातखण्डे जी ने संगीत को घरानों की संकीर्णता से बाहर निकालकर उसे जन–जन के लिए सुलभ कराकर संगीत के क्षेत्र में लोकतन्त्र की स्थापना की। उन्होने अपने वकालत के व्यवसाय को त्यागकर संगीत की आजन्म सेवा का व्रत धारण किया। पण्डित जी ने संगीत की उन्नति के लिए निरालस्य चिन्तन, मनन, प्रचार तथा शिक्षा को जन–जन तक पहुँचाने के लिए निःस्वार्थ भावना से अनेक कार्य किये।

संगीत ग्रन्थों का लेखन एवं शास्त्र संशोधन–

संगीत कला एवं उसके शास्त्र पक्ष सम्बन्धी भ्रांतियों को दूर करने एवं शास्त्र पक्ष का विशेष ज्ञान प्राप्त करने तथा भविष्य हेतु उसे संरक्षित करने के उद्देश्य से पं. भातखण्डे जी ने भारत के लगभग सभी नगरों के पुस्तकालयों का भ्रमण किया। विभिन्न संगीत विद्वानों से भेंटकर अनेक प्रचलित एवं अप्रचलित रागों तथा संगीत सम्बन्धी अन्य जानकारी प्राप्त की। इन संग्रहित किये गये तथ्यों के आधार पर उन्होने कई ग्रन्थों की रचना की। इनमें कुछ प्रमुख पुस्तकें निम्नलिखित हैं– 'क्रमिक पुस्तक मालिका' यह पुस्तक छः भागों में है जिसका प्रथम भाग सन् 1920 में, द्वितीय भाग सन् 1921, तृतीय भाग सन् 1922, चतुर्थ भाग सन् 1923 तथा पांचवां एवं छठवां भाग सन् 1939 में प्रकाशित हुए। जिनमें लगभग दो हजार बंदिशों का संकलन किया गया है। इन सभी भागों में सरगम गीत, छोटे ख्याल, विलम्बित ख्याल, ध्रुपद, धमार, तराना, लक्षणगीतों की स्वरलिपि दी गई है। इसके अतिरिक्त 'भातखण्डे संगीत शास्त्र' जोकि चार भागों में प्रकाशित है। इसमें संगीत सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान प्रश्नोत्तर शैली में दिया गया है। पण्डित भातखण्डे जी द्वारा रचित संगीत की कुछ अन्य पुस्तकें निम्नलिखित हैं 'लक्ष्यसंगीत', 'अभिनव राग मंजरी', 'भारतीय संगीत का इतिहास', 'संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन', 'लक्षणगीत', 'गीत मालिका', 'स्वर मालिका संग्रह', 'पारिजात प्रवेशिका', 'राग विवोध प्रवेशिका' आदि। वर्तमान में इन सभी पुस्तकों का बहुत महत्व है। लगभग सभी विद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा संगीत सम्बन्धी संस्थानों में इन पुस्तकों का उपयोग किया जा रहा है।

थाट–राग वर्गीकरण पद्धति का निर्माण–

यद्यपि मध्यकालीन राग–रागिनी वर्गीकरण पद्धति उस समय अत्यन्त महत्वपूर्ण थी किन्तु पं. भातखण्डे जी ने स्वर तथा स्वरूप की साम्यता के आधार पर राग–रागिनी पद्धति के स्थान पर वैज्ञानिक और सैद्धान्तिक रूप से सिद्ध एक नवीन वर्गीकरण पद्धति थाट–राग वर्गीकरण पद्धति का निर्माण किया। हिन्दुस्तानी संगीत के तत्कालीन समय में प्रचलित लगभग सभी रागों को उन्होने थाट–राग वर्गीकरण पद्धति में वर्गीकृत किया। वर्तमान समय में यह पद्धति अत्यन्त प्रचलित है। पण्डित जी ने हिन्दुस्तानी संगीत के रागों को निम्नलिखित दस थाटों में वर्गीकृत किया था– बिलावल, कल्याण, खमाज, काफी, आसावरी, भैरवी, भैरव, मारवा, पूर्वी, तोड़ी।

संगीत सम्मेलनों एवं संगीत संस्थानों की स्थापना–

संगीत को जन–जन तक पहुँचाने के लक्ष्य को साकार करने हेतु पण्डित भातखण्डे जी ने कई संगीत संस्थानों की स्थापना की जिसमें लखनऊ का प्रसिद्ध मैरिस म्यूजिक कालेज सन् 1926 में स्थापित किया जिसे वर्तमान में 'भातखण्डे संस्कृति विश्वविद्यालय' के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त ग्वालियर का 'माधव संगीत विद्यालय' सन् 1918 में तथा 'बड़ौदा का म्यूजिक कालेज' प्रमुख है। वर्तमान समय में इन संस्थाओं में अनेक विद्यार्थी संगीत की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। संगीत के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से ही पं. भातखण्डे जी ने संगीत सम्मेलनों का आयोजन प्रारम्भ किया। प्रथम संगीत सम्मेलन बड़ौदा सन् 1916, द्वितीय संगीत सम्मेलन दिल्ली सन् 1918, तृतीय संगीत सम्मेलन बनारस सन् 1919, चतुर्थ संगीत सम्मेलन अहमदाबाद सन् 1924, पांचवा संगीत सम्मेलन लखनऊ सन् 1926 में आयोजित किया गया था। वर्तमान समय में जिस प्रकार संगीत सम्मेलनों के आयोजन में वृद्धि हुई है वह पण्डित जी के प्रयास के फलस्वरूप ही है।

भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति का निर्माण–

पं. भातखण्डे जी ने संगीत शिक्षा को सरल बनाने के उद्देश्य से एक नवीन स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया जिसे वर्तमान समय में भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति के नाम से जाना जाता है। यह स्वरलिपि पद्धति अत्यन्त सरल है क्योंकि इस पद्धति के

अन्तर्गत कम चिन्हों में संगीत की अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। वर्तमान समय में यह स्वरलिपि पद्धति ही सबसे अधिक प्रचलित है।

पं. भातखण्डे जी द्वारा संगीत शिक्षा के लिए किये गये अन्य महत्वपूर्ण कार्य–

- **राग की पकड़ अंग का निर्माण–** पं. भातखण्डे जी ने हिन्दुस्तानी संगीत में राग की पकड़ अंग का निर्माण किया तथा राग विवरण को क्रमानुसार व्यवस्थित किया। सर्वप्रथम उन्होने ही राग वर्णन के लिए आरोह, अवरोह व चलन, उठाव आदि का प्रयोग किया।
- स्वरों के आधार पर रागों का गायन–समय निर्धारण।
- लगभग 125 लक्षणगीतों की रचना।
- रागों का विभाजन रागों के अंग के अनुसार– उन्होने काफी थाट के रागों को छः अंगों धनाश्री अंग, कान्हड़ा अंग, सारंग अंग, मल्हार अंग, काफी अंग तथा बागेश्री अंग में विभाजित किया।
- लगभग 123 स्वरमालिकाओं की रचना।

निष्कर्ष–

वर्तमान समय में जिस प्रकार संगीत देश के लगभग सभी प्रान्तों तथा नगरों के विद्यालयों और विश्वद्यिालयों में विभागों एवं संकाय के रूप में दृष्टिगत होता है। वह पं. भातखण्डे जी के द्वारा किये गये प्रयत्नों का प्रतिफल है। पं. भातखण्डे जी ने संगीत संस्थानों हेतु संगीत का उचित शास्त्र (पाठ्यक्रम) का निर्माण किया तथा संगीत विषय को सुव्यवस्थित, परिवर्द्धित और संशोधित करके अन्य विषयों के समकक्ष स्थान दिलाया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. शर्मा, डॉ. महारानी, संगीत मणि– भाग–2, पृष्ठ–93/156
2. सक्सेना, डॉ. मधुवाला, भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, पृष्ठ–43
3. सराफ, डॉ. रमा, भारतीय संगीत सरिता, पृष्ठ–248
4. श्रीवास्तव, प्रो. हरिश्चन्द्र, राग परिचय भाग–2, पृष्ठ–252